P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue- X* June -2016

'पत्नी' और जैनेंद्र का नारी–चिंतन

मोहम्मद अरशद ख़ान
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
जी0एफ0पी0जी0कॉलेज,
शाहजहाँपुर

सारांश

हिंदी कथाकारों में जैनेंद्र का नाम वि"ोष महत्वपूर्ण है। जैनेंद्र ने हिंदी कथा साहित्य को नवीन जीवन–द"र्न,रचना–ि"ाल्प और भाव–बोध प्रदान किया। जैनेंद्र ने प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थ से अलग मनोजगत की दुनिया आर दा"र्निक चिंतन को अपनी रचनाओं का आधार बनाया, जो उनके स्वतंत्र चिंतन का परिचायक है। जैनेंद्र की अधिकतर रचनाएँ नारी चरित्र प्रधान हैं। जैनेंद्र ने नारी चरित्रों के अंकन में जिस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है वह महत्वपूर्ण है। स्त्री–जीवन के विविध पक्षों और उसकी मनोद"ाओं का जैसा विश्वसनीय अंकन जैनेंद्र ने किया है, वह उस दौर में अन्यत्र दुर्लभ दिखाई देता है। जैनेंद्र की एक महत्वपूर्ण कहानी है–'पत्नी'। प्रस्तुत शोध पत्र में इस कहानी के माध्यम से जैनेंद्र के नारी विम"र्ा की मूल भावभूमि का वि"लेषण करते हुए, उनमें प्रगति"ाील चेतना की झलक और आधुनिक नारी विम"र्ा के चिह्न तला"ाने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्दः हिंदी कहानी, नारी–विम"र्ा, दा"र्निक–चिंतन,विवाह–संस्था, प्रेमचंद–काल, मनोवि"लेषण, क्रांतिकारी–चेतना, स्वाधीनता–आंदोलन,व्यक्ति–चरित्र, वर्ग–चरित्र

प्रस्तावना

जैनेंद्र हिंदी कहानी का ऐसा चेहरा हैं, जिन्हें छोड़कर हिंदी कहानी के एक वि"ोष समय को उसकी समग्रता में नहीं समझा जा सकता। हिदी साहित्य में जैनेद्र का आगमन 1929 में हुआ। यह दौर कथा जगत में प्रेमचंद के चक्रवर्तित्व का था। ऐसे में जैनेद्र ने प्रेमचंद के य"ा से धधकते हिंदी साहित्य के फलक पर अपना एक अलग स्थान निर्मित किया, जैनेंद्र का यही वास्तविक महत्व है। उन्हें एक ओर शरत और रवींद्र से जोड़कर देखा गया तो दूसरी ओर दस्त्योवस्की से। कहीं उनके साहित्य को 'रोमानी कल्पना का प्रयोगमात्र'[1], कहा गया तो कहीं 'नपुंसकता का सार्थक प्रद"र्न'[2]। किंतु ''जैनेंद्र का सर्वाधिक महत्व इस बात में स्वीकारा जाना चाहिए कि उन्होंने कथा साहित्य को नई दि"ाा दी।''[3] ''हिंदी में द"र्न, मनोविज्ञान, आध्यात्म, और भाव–निष्ठा को कला चेतना के साथ संपृक्त करने का श्रेय जैनेंद्र को ही प्राप्त है।''[4] जैनेन्द्र लीक छोड़कर चलन वाले कहानीकार थे। प्रेमचंद के नितांत अभिन्न होने के बावजूद उन्होंने प्रेमचन्द के आभावृत्त से बाहर रहकर सामाजिक यथार्थ के मार्ग से परे नया पथ चुना। पर उन्हें प्रेमचन्द का विपरीत ध्रुव नहीं समझा जाना चाहिए। सच तो यह है कि प्रेमचन्द और जैनेन्द्र को साथ–साथ रखकर ही तत्कालीन जीवन और इतिहास को उसकी समग्रता के साथ समझा जा सकता है। इस संबंध में विजयेंद्र स्नातक का यह कथन महत्वपूर्ण है कि –''जो जैनेंद्र कुमार को नहीं समझते, उनसे कुछ कहना व्यर्थ है, किंतु जो जैनेंद्र के कथा साहित्य की शक्ति से पूरी तरह परिचित हैं उनसे मेरा निवेदन है कि वे जैनेंद्र के प्रदेय को उसी रूप में स्वीकार करें जिस रूप में प्रेमचंद ने स्वीकार किया था।''[5]

किंतु इससे भी इनकार नहीं किया जाना चाहिए; और न ही बचाव करने का प्रयास, कि जैनेंद्र की रचनाओं में– वि"ोषकर उपन्यासों में– दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों के वि"लेषण से दुरूहता पैदा हुई है। परंतु ये सारे तत्व जहाँ–जहाँ भी आए हैं, वहाँ वे पात्रों के अंतर्जगत की दुनिया सृजित करते–से लगते हैं। यही कारण है कि पाठक को जैनेंद्र के पात्र बाहरी दुनिया और घटनाओं से अछूते और अपनी अंतर्मुखी गतियों से संचालित लगते हैं।

जैनेंद्र की रचनाओं में प्रायः नारी पात्र प्रधानता लिए हुए होते हैं। जैनेंद्र ने नारी पात्रों के चित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है। स्त्री के विविध रूपों और उसकी मनोभावनाओं का जैसा विश्वसनीय अंकन जैनेंद्र ने किया है, वैसा और कहीं मु"किल से दिखाई पड़ता है। यद्यपि आधुनिक नारी–विम"र्ा को जैनेंद्र की रचनाओं से जोड़कर नहीं देखा जा सकता, पर उसके बीज –यदि सहानुभूति पूर्वक विचार किया जाए तो– अंकुरित होते लक्षित किए जा सकते हैं।

जैनेंद्र के इन्हीं विचारों पर आधारित उनकी एक महत्वपूर्ण कहानी है–'पत्नी'। इस कहानी में शायद नारी के प्रति उनके स्त्री विषयक दृष्टिकोण को ज़्यादा बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। कहानी की वि"ाष्टता इस नाते और भी है कि दुरूहता, मनोवैज्ञानिक जटिलता और दा"ानिक उलझाव जैसे आरोप, जो उनकी कथा–कृतियों पर आमतौर पर लगाए जाते रहे हैं, उन संभावनाओं से भी यह मुक्त है।

पत्नी के संदर्भ में जैनेद्र स्वयं लिखते हैं–''पत्नी कहानी किस सन में लिखी गई ठीक तरह से याद नहीं, प्रेमचंद तब जीवित थे। यानी सन 1936 रहा होगा। ...उन दिनों क्रांतिकारी भगवतीचरण की कहानी उज्ज्वल वर्णों में उभर कर आई थी। वह बम गोले का प्रयोग करते समय लाहौर में रावी नदी के किनारे घायल हुए और देहात प्राप्त कर गए। घायल होने और मरने के बीच काफी समय उनमें साँस रहा। बताया जाता है कि इस अवधि में भी उन्हें अपने कष्ट का उतना ध्यान था, जितनी दे"ा के और दूसरे साथियों के योग–क्षेम की चिंता थी। मैंने सोचा वह तो क्रांति को लेकर जी गए, लेकिन उनके सगे–सबंधियों ने क्या पाया? कहानी उपजी इसी बिंदु से।''6

इस कहानी का शीर्षक ही जैसे भारतीय विवाह–संस्था और नारी की स्थिति पर व्यंग्य करता प्रतीत होता है। कहानी का आरंभ जैनेंद्र बड़े ही सीधे–सादे किंतु सांकेतिक ढंग से करते हैं–'"ाहर के एक ओर तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अंगीठी लिए बैठी है। अंगीठी की आग राख हुई जाती है। वह जाने क्या सोच रही है। उसकी अवस्था बीस–बाईस के लगभग होगी। देह से कुछ दुबली है और संभ्रांत कुल की मालूम देती है।''7

उपर्युक्त पैराग्राफ पढ़ते समय साफ लगता है कि जैनेंद्र किसी नाटक के रंग–संकेत लिख रहे हैं, या इसी बहाने यह व्यंजित करने का प्रयास कर रहे हैं कि स्त्री का जीवन ही नाटक बनकर रह गया है और जीवन की ऊष्मा राख हुई जा रही है। सिर्फ इतना ही नहीं उसकी अवस्था, द"ाा और कुल का जो संकेत जैनेंद्र यहाँ करते हैं, वह भी सोद्दे"य है, जिसके संदर्भ कहानी में आगे चलकर खुलते हैं।

सुनंदा चौके में बैठी अपने पति कालिंदीचरण का इंतज़ार कर रही है। रात के बारह बज चुके हैं। वह राख होती जा रही अंगीठी और ठंडे होते जा रहे जीवन, दोनों को निरपेक्ष भाव से देख–महसूस कर रही है, उसे न तो इसमें परिवर्तन की आ"ाा ह । और न ही इसे सुधार सकने की चाहत या सामर्थ्य। इस निस्संगता में उचाट भाव से बैठी सुनंदा के संदर्भ में जैनेंद्र यहाँ एक महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं–''वह (सुनंदा) सोचती है–नहीं सोचती कहाँ है, अलस भाव से बैठी हुई है। सोचने को है तो यही कि कोयले बुझ न जाएँ।''[8] आज के स्त्री–विम"ा में स्त्री की जो ख़ुद की सोच विकसित करने की बात की जा रही है, और जो उसके अपने शास्त्र के निर्मिति की बात है, शायद जैनेंद्र उसी महत्वपूर्ण और असल बिंदु की ओर संकेत करके पाठक का ध्यान खींचना चाहते हैं।

आगे चलकर वह लिखते हैं कि ''उसको न तो भारतमाता समझ में आती है और न स्वतंत्रता।''[9] यहाँ भारत के स्थान पर 'भारतमाता' कहकर और उससे स्वतंत्रता के प्र"न को जोड़कर जैनेंद्र अर्थ की व्याप्ति को बहुत दूर तक ले जाते हैं––भारतमाता कहने में स्त्रीत्व और बेड़ियों में जकड़े रहने का जो बोध है वह जैसे स्त्री की नियति की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। भारतमाता कहने के भीतर गहरे कहीं यह अर्थ भी खोजा जा सकता है कि भारत सिर्फ ज़मीन के एक टुकड़े का नाम नहीं, बल्कि इसकी स्वतंत्रता का अर्थ इसके रहनेवाले लोगों की आज़ादी से भी जुड़ा हुआ है। जैसा कि नेहरू कहा करते थे कि 'भारत माता की जय का अर्थ है, भारत में रहनेवाली जनता की जय'। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपने निंबध 'प्राय"चित की घड़ी' में भारत माता का यही अर्थ उद्घाटित किया है।[10]

इसे छोड़कर न तो क्रांति और न ही स्वतंत्रता का कोई अर्थ समझा जा सकता है। हालाँकि यहाँ बात उतनी साफ़ नहीं है और न ही उतने बल से इसका समर्थन किया जा सकता है जितना कि प्रेमचंद की रचनाओं के संबंध में। जैनेंद्र के वहाँ ऐसे प्रसंग प्रेमचंद के मुक़ाबले टाइप कम, वि"ाष्ट व्यक्ति–संदर्भित ज़्यादा नज़र आते हैं। पर इसके बावजूद क्षीण रूप में ही सही इसकी प्रतिध्वनि महसूस तो की ही जा सकती है।

आगे जैनेंद्र लिखते हैं–''कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी ही चाहिए....और सुनंदा बैठी है।''[11]

यहाँ जैनेंद्र वाक्य की वक्रता से, दो विरोधाभासी चित्रों को एक साथ लाकर जैसे इस विडंबना की ओर संकेत करना चाहते हों कि कालिंदीचरण के देह की फिक्र करनेवाली सुनंदा को क्या अपनी देह की फिक्र नहीं करनी चाहिए? संभ्रांत कुल की होने के बावजूद सुनंदा पढ़ी–लिखी नहीं है। हिंसा–अहिंसा, समानता, स्वतंत्रता, क्रांति जैसे बड़े–बड़े शब्द उसकी समझ में नहीं आते हैं। कालिंदीचरण भी उससे इसकी चर्चा नहीं करना चाहते। चर्चा तो दूर, पति–पत्नी संबंध की लाज रखने भर को भी संवाद बनाए रखना नहीं चाहते। ''जैनेंद्र कुमार ने पत्नी के बहाने हमारी भारतीय परिवार व्यवस्था पर प्र"न चिह्न लगाए हैं कि कैसे एक आदमी दे"ा की आज़ादी जैसे बड़े प्र"न से जुड़ता है और जान हथेली पर रखकर चलने वाले क्रांतिकारी दस्ते में शामिल हो जाता है, लेकिन घर में वह पति ही बना रहता है।''[12]

जैनेद्र के क्रांतिकारी कुछ अमूर्त किस्म के क्रांतिकारी लगते हैं। उनकी बातों में, बहस–मुबाहिसों में राष्ट्र और उसकी चिंताएँ होते हुए भी एक अजब–सी रोमानियत और समय–समाज से कटापन उन पर हावी रहता है। कहीं–कहीं तो उनके क्रांतिकारी किसी मानसिक गुत्थी में ऊभ–चूभ होते, नारी के प्रति अपनी कुंठाओं और गाँठों को खोलते–सुलझाते इस तरह उलझकर रह जाते हैं कि क्रांतिकारिता का प्र"न, शा"वतता और दा"ानिकता के जाल में गुम होकर रह जाता है। पर यह कहानी इन मायनों में थोड़ा भिन्न है। यद्यपि यहाँ भी क्रांति की बहस पर एक लंबा वक्तव्य जैनेंद्र प्रस्तुत करते हैं, पर यहाँ उनके विचार–केंद्र में कालिंदीचरण नहीं, बल्कि सुनंदा है।

जैनेंद्र इस कहानी में कई विडंबनाओं की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं। एक ओर वे कहते हैं कि सुनंदा संभ्रांत कुल की मालूम देती है, तो दूसरी ओर

कहते हैं कि वह पढ़ी–लिखी नहीं है, या कम पढ़ी–लिखी है, तो स्त्री–शिक्षा की ज़मीनी बात कह रहे होते हैं। यद्यपि तब तक नारियों की शिक्षा का प्रति"ात बढ़ने लगा था और वे जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराने लगी थीं। स्वाधीनता आंदोलन में भी उनकी हिस्सेदारी बढ़ने लगी थी। पर ऐसी स्त्रियाँ कितने प्रति"ात थीं? जब संभ्रांत कुल में उनकी पढ़ाई का अर्थ सिर्फ पति–सेवा था तो समाज की अधिसंख्य निम्नवर्ग महिलाओं की क्या स्थिति रही होगी? मानो जैनेंद्र यह सवाल भी पूछना चाहते हों।

कालिंदीचरण स्वतंत्रता की बात तो करते हैं, पर उनकी यह विचारधारा सिर्फ द"ा की राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित है। प्रतीक्षा में बैठी सुनंदा उनके साथियों को सारा खाना परोस देती है। पर उसने ख़ुद खाया कि नहीं, कालिंदीचरण को इसकी परवाह नहीं है। सुनंदा चाहती तो ख़ूब है कि कांलिदीचरण उससे दे"ा–दुनिया की बातें करें, उसे भी समझे और उसको कुछ समझाएँ भी। पर कालिंदीचरण पारिवारिक सरोकारों से कटे हुए क्रांतिकारी हैं। वह दे"ा स्वतंत्र तो कराना चाहते हैं, पर दे"ा है क्या? सिर्फ एक भूखंड या फिर उसमें रहनेवाले लोग––यह उन्हें स्पष्ट नहीं। अपने दल में वह आद"ावादी, आदरणीय, सहृदय, सहिष्णु और उदार माने जाते हैं। पर पत्नी के साथ व्यवहार में उनकी ये सारी ख़ूबियाँ धरी रह जाती हैं। जब मृत बेटे की स्मृति में डूबी सुनंदा से वह खाना माँगने आते हैं और वह मौन व ठंडे व्यवहार से अपना विरोध दर्ज करती है तो कांलिदीचरण का अहं आहत हो जाता है। अहिंसा के प्रखर समर्थक होने के बावजूद जब वह अपनी मित्र–मंडली में वापस पहुँचते हैं तो उन्हें अपनी वैचारिक चेतना की भित्ति ही सरकती लगती है और उनका निष्कर्ष होता है–''हाँ, आतंक ज़रूरी भी है।''13 जैनेंद्र मानो कहना चाहते हों कि जिस स्वाधीनता आंदोलन की दि"ाा व्यक्तिगत राग–द्वेष, अहं और पूर्वाग्रह से तय होती हो वह कितना सफल हो सकता है? हालाँकि जैनेद्र की रचनाओं में यह चीज़ें मनोविज्ञान की तह के नीचे इतनी ढक–छिपकर आती हैं कि उसके बोझ तले अप्रधान हो जाती हैं।

वही सुनंदा, जो ''उसका काम तो सेवा है''14 मानती है और अपनी जीवन–स्थितियों को अपनी नियति स्वीकारती है, कांलिदीचरण के आचरण पर क्रोधित हो बैठती है। किंतु यह यकायक घटित नहीं होता। जैनेंद्र उसके इस व्यवहार का मनोविज्ञान शुरू से बुनते हैं। सुनंदा पति के दर–ब–दर भटकने और मारे–मारे फिरने से और कुछ भले ही न समझे, पर इतना ज़रूर मानती है कि ''उसमें वे दे"ा का कुछ भला ही सोचते होंगे।''15 पर अचानक कांलिदीचरण की तन के प्रति लापरवाही से दायित्वों के प्रति लापरवाही का विचार आता है और इसी से जुड़ा अपने पुत्र की मृत्यु का प्रसंग भी। सुनंदा का मन कसैला हो जाता है। उसका मन होता है कि हाथ में ली हुई बटलोई को ज़ोर से फेंक दे। आज भूखे रह जाने पर उसके मन में स्वाभिमान का भाव नहीं जागता, बल्कि एक आक्रो"ा पनपाता है। हालाँकि अपने भीतर हुए इस परिवर्तन का कारण वह स्वयं भी नहीं समझ पाती। सहज मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के कारण उपजा उसका सारा प्रतिरोध क्षणिक और तापहीन भले साबित हो जाता है, लेकिन यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि मनोवैज्ञानिकता के इस प्रयोग से सुनंदा के चरित्र में जीवंतता पैदा हुई है। आपने आक्रो"ा के बावजूद सुनंदा उसे अपनी नियति मानकर फिर से उसी दुनिया में लौट जाती है। शायद जैनेंद्र के मनोविज्ञान की सीमा भी यही है। यही कारण है कि कांलिदीचरण 'अभ्यासव"ा' उसे ज़ोर से पुकारते हैं और वह 'हमे"ा की तरह' दरवाज़े की ओट में तत्पर खड़ी मिलती है।

आधुनिक नारी–विम"र्काार शायद कहानी के ऐसे अंत से सहमत न हों और अंततः उन्हें नारी के भीतर क्रांतिकारिता या आक्रो"ा का स्थायी भाव पनपता हुआ न दिखाई दे, और न गुलामी की ज़ंजीरें बिखरने की सुगबुगाहट ही दीख पड़े, पर इसमें संदेह नहीं कि जैनेंद्र ने इस कहानी में न केवल स्त्री के अंतस् की छटपटाहट का चित्र खींचने को को"ि"ा की है, बल्कि एक सीमा के साथ ही सही, उसे तत्कालीन सामाजिक सच्चाइयों के बीच से देखने की को"ि"ा भी की है। उनके चरित्र प्रेमचंद की भाँति वर्ग–चरित्र भले ही न होकर वि"िष्ट दिखाई दें, पर इस बात से सहमत हुआ ही जा सकता है कि अस्फुट रूप में ही सही, स्त्री–जीवन पर सहानुभूतिपूर्वक यथार्थ दृष्टि डालने की को"ि"ा जैनेंद्र ने की है और अपने सचेत भाषा–प्रयोग और साकेंतिकता से उसे सजीव बना दिया है।

उद्देश्य

'पत्नी' का प्रका"ान 1936 के आस–पास हुआ। यह दौर हिंदी में प्रगति"ाील आंदोलन के उभार का है। प्रगतिवाद ने हिंदी साहित्य को एक नया चिंतन दिया। नारी के प्रति समानता की दृष्टि प्रगति"ाील चिंतन का ही एक आयाम है। आमतौर पर जैनेंद्र के साहित्य के प्रति प्रगति"ाील चिंतकों की दृष्टि बहुत सहानुभूति पूर्ण नहीं रही है। नारी–पात्रों के चित्रण में उनकी काम–कुंठा, और प्रेम–वासना संबंधी दृष्टि को उभारकर उन्हें आलोचनाओं का शि"ाकार बनाया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्दे"य 'पत्नी' कहानी के आधार पर उनकी नारी संबंधी प्रगति"ाील सोच को उद्घाटित करना है।

निष्कर्ष

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि जैंनेंद्र के साहित्य में पात्रो के मनोवैज्ञानिक वि"लेषण से दुरूहता उत्पन्न हुई है। प्रेमचंद्र के पात्र यदि उनके हाथों की कठपुतली कहे जाते हैं तो जैंनेंद्र के पात्र भी मनोवैज्ञानिक गुत्थियों के दास हैं। पर इन सीमाओं के बावजूद जैनेंद्र के नारी पात्र अपनी वि"िष्टताओं के कारण महत्वपूर्ण हो उठे हैं।'पत्नी' कहानी में सुनंदा का मानसिक उहापोह, दयनीय द"ा और परिस्थियों से ऊपर उठने की को"ि"ा उसे एक अलग ही रंग प्रदान करता है। आज का आधुनिक नारी विम"र्ा उसे भले ही अपने निकट की वस्तु न समझे, पर जैनेंद्र का चिंतन नारी विम"र्ा की अस्पष्ट ही सही एक छवि तो निर्मित करने का प्रयास अव"य करता है। तत्कालीन प्रगतिवादी आंदोलन का कोई सीधा संबंध इससे भले ही न हो, पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर करवट बदलती परिस्थितियों और निर्मित होते नए चिंतन का कुछ पभाव इस कहानी में अव"य दिख जाता हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बाजपेयो, नंद दुलारे : नया साहित्य–नए प्र"न, विद्यामंदिर प्रका"ान, वाराणसी, 1959, पृ0–16
2. तिवारी, रामचंद्र : हिंदी का गद्य साहित्य, वि"वविद्यालय प्रका"ान, वाराणसी, 2004, पृष्ठ–673
3. मिश्र, रामदर"ा : हिंदी उपन्यास–एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रका"ान, नई दिल्ली, 1995, पृ0–90
4. रमे"ा बक्षी का पत्र, उदधृत जैनेंद्र : प्रतिनिधि कहानियाँ, सं0– प्रसाद, ि"ावनंदन, पूर्वोदय प्रका"ान, दिल्ली, मार्च 1969, पृ0–372)
5. जैनेंद्र : कहानी–अनुभव और ि"ाल्प, भूमिका, पूर्वोदय प्रका"ान, दिल्ली, 1967, पृ0–17
6. उदधृत,जैनेंद्र : प्रतिनिधि कहानियाँ , सं0 – प्रसाद, ि"ावनंदन, पूवोदय प्रका"ान, दिल्ली, मार्च 1969, पृ0–359–60
7. वही, पृ0–211
8. वही, पृष्ठ–211
9. वही, पृष्ठ–212
10. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : अ"ोक के फूल, लोक भारती प्रका"ान, इलाहाबाद, छात्र संस्करण 2002,पृ0–19–20
11. जैनेंद्र : प्रतिनिधि कहानियाँ, सं0– प्रसाद, ि"ावनंदन, पूर्वोदय प्रका"ान, दिल्ली, मार्च 1969, पृ0–211
12. वर्तमान साहित्य, दिसंबर 2005, डॉ0 सूरज पालीवाल का आलेख– परंपरागत परिवार संस्था पर प्र"नचिह्न लगाती 'पत्नी'
13. जैनेंद्र : प्रतिनिधि कहानियाँ, सं0– प्रसाद, ि"ावनंदन, पूर्वोदय प्रका"ान, दिल्ली, मार्च 1969, पृ0–215
14. वही, पृष्ठ–212
15. वही, पृष्ठ–213